आगे बढ़ गया है। विकल्प की वृत्ति (उत्पन्न होती है) तो उसकी भूमिका विकल्पवाली, रागवाली है। ये तो विकल्पसे आगे बढ़ गया है। उसे वृत्ति नहीं है। सब रागसे छूट गया है। उसे तो सहज जानने में आता है। बिना इच्छासे जानता है। जानने की इच्छा नहीं है, सब छूट गया है। निरिच्छासे जानता है, सहजरूपसे जानता है। केवलज्ञानी को कुछ जानने की इच्छा नहीं है तो भी सब जानते हैं। तो यह एक अंश है केवल का। निरिच्छासे जानता है।

मुमुक्षु :- केवलज्ञान का अंश है।

समाधान :- केवलज्ञान का अंश है। अंतर में स्वपरप्रकाशक है। बाहर उपयोग नहीं जाता है लेकिन स्वपरप्रकाशक है। द्रव्य को जाने, गुण को जाने, पर्याय को जाने, सबको जाने। स्वपरप्रकाशक है। स्वपरप्रकाशक गुण नाश नहीं हो जाता।

मुमुक्षु :- माताजी! द्रव्य में पर्याय नहीं तो फिर पर्याय को क्यों गौण की जाती है?

समाधान :- द्रव्य में पर्याय नहीं है अर्थात् द्रव्य और पर्याय का स्वरूप भिन्न है। द्रव्य, गुण और पर्याय तो द्रव्य का स्वरूप है। पर्याय का स्वरूप और द्रव्य का स्वरूप। द्रव्य शाश्वत और पर्याय पलटती है। इसलिये ऐसा कहते हैं कि द्रव्य में पर्याय नहीं है। द्रव्य के आश्रयसे पर्याय होती है। द्रव्य के आश्रय बिना पर्याय होती नहीं। द्रव्य, गुण और पर्याय सब वस्तु का स्वरूप है। पर्याय को गौण करने में जाती है। दृष्टि की मुख्यतासे पर्याय को गौण करने में आती है। दृष्टि द्रव्य पर है और पर्याय को गौण करता है। ज्ञान दोनों को जानता है। ज्ञान द्रव्य को जानता है, ज्ञान पर्याय को जानता है। दृष्टि के बल में आत्मा में जीवस्थान नहीं है, गुणस्थान नहीं है, कुछ नहीं है ऐसा कहते हैं। क्योंकि दृष्टि दूसरों को देखती ही नहीं। दृष्टि को अन्य कुछ देखना वह उसका विषय ही नहीं है। दृष्टि एक चैतन्य पर ही रखनी। वही उसका विषय है। दृष्टि दूसरा कुछ नहीं देखती। दृष्टि का विषय, दृष्टि एक को ही ग्रहण कर लेती है। फिर विशेष जानना वह ज्ञान का कार्य है, वह दृष्टि का कार्य नहीं है। एक पर दृष्टि रहती है। पर्याय कहीं चली नहीं जाती। दृष्टि का विषय एक को ग्रहण करने का है। उसमें पर्याय है।

दृष्टिने एक द्रव्य को ग्रहण कर लिया। उसमें पर्याय तो है। ज्ञान सब जानता है। साधना की पर्याय है, अधूरी, पूर्ण पर्याय है, सब ज्ञान जानता है। उष्णता देते-देते जैसे सुवर्ण सोलह वाल होता है। सुवर्ण तो सुवर्ण ही है। लेकिन अभी अल्पता है, सुवर्ण में भी अभी पूरा स्पष्ट.. स्वभावसे सुवर्ण ही है, लेकिन उसे उष्णता देते-देते सोलह वाल होता है। वैसे अभी साधना की पर्याय अधूरी है। इसलिये पुरुषार्थ करता है, आगे बढ़ता है। ज्ञान में जानता है कि यह पर्याय की न्यूनता है। कितना प्रगट हुआ? कुछ शुद्धता प्रगट हुई है, कुछ शुद्धता बाकी है। इसलिये अभी अन्दर चारित्र की दशा, स्वरूप रमणता विशेष नहीं है, कुछ स्वरूप रमणता है, यह सब ज्ञान में जानता है और आगे बढ़ता है। दृष्टि के बलमें उसे गौण (करते हैं)। पर्याय है ही नहीं ऐसा नहीं है। दृष्टि उसे देखती नहीं। दृष्टि में वह दिखाई नहीं देती।

दृष्टि का विषय एक को ग्रहण (करना है)। मूल ध्येय क्या है? एक द्रव्य को ग्रहण करके आगे चलने का है। इसलिये एक द्रव्य को ग्रहण कर लिया। अनादि कालसे द्रव्य पर दृष्टि नहीं है इसलिये एक द्रव्य को ग्रहण कर लिया कि मैं कौन हूँ? उसका मूल स्वरूप ग्रहण कर लिया। वह ग्रहण करके के बाद पर्याय में कितनी अल्पता है, उस अनुसार उसकी पुरुषार्थ की धारा चलती है। स्वानुभूति इत्यादि सब यहाँ–से प्रगट होता है, द्रव्य पर दृष्टि के ज़ोरसे।

मुमुक्षु :– ज्ञान के विषय में दोनों आते हैं–द्रव्य और पर्याय। इसलिये एक को मुख्य करता है और एक को गौण करता है।

समधान :– एक को मुख्य और एक को गौण। ज्ञान दोनों ग्रहण करता है। जो दृष्टि का विषय है उसे भी ज्ञान ग्रहण करता है। दृष्टि के विषय को ज्ञान उसके स्थान में रखकर पर्याय को जानता है। दृष्टि को तोड़कर नहीं जानता। दृष्टि और ज्ञान बराबर... दृष्टि का विषय ज्ञान जानता है और द्रव्य का स्वरूप भी ज्ञान जानता है और पर्याय का स्वरूप भी ज्ञान जानता है। ज्ञान जानता है उस अनुसार फिर विशेष पुरुषार्थ करके स्वरूप में स्थिर होता है, आगे जाता है। विभावसे भेदज्ञान तो हुआ है, लेकिन विशेष आगे जाता है।

मुमुक्षु :– सम्यक् सन्मुख जीव को किसप्रकार का तत्त्व चिंतवन होता है? और देव–गुरु–शास्त्र प्रति कैसी भक्ति होती है?

समाधान :– सम्यक् सन्मुख में तत्त्व का विचार होता है। खुद कहाँ है वह देखना है। मैं कौन हूँ? मेरा क्या स्वरूप है? द्रव्य–गुण–पर्याय का उसे चिंतवन होता है। मैं द्रव्य कौन हूँ? मेरे गुण, मेरी पर्याय इत्यादि सबके विचार होते हैं। गहराईसे होता है। बारंबार स्वभाव को ग्रहण करता है। ज्ञायक, मैं कौन हूँ, उस ज्ञायक के स्वभाव को ग्रहण करे, विभाव को भिन्न करने का प्रयत्न करे। विभाव और स्वयं वस्तु स्वभावसे भिन्न ही हैं, लेकिन उसका प्रयत्न करता है। ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करता है। ऐसा सब प्रयत्न करता है। वह खुद कहाँ खड़ा है वह खुद को देखना है। कैसे ग्रहण करता है और कैसे अभ्यास करता है, यह खुद को देखना है। शुभभाव में देव, गुरु, शास्त्र की महिमा होती है। भगवानने जो पूर्ण स्वरूप प्रगट किया उसकी महिमा है। गुरुने जो वस्तुस्वरूप बताया, ऐसे गुरु की महिमा है। शास्त्र में जो वस्तु स्वरूप आता है उसकी महिमा है। सब की महिमा होती है। तत्त्व के विचार होते हैं। महिमा होती है, विभावसे भिन्न पड़ता है, ज्ञायक को ग्रहण करता है। कैसे ग्रहण करता है, सम्यक् सन्मुख कैसे है वह खुद को विचारना है। तत्त्व को पहचानकर करता है या ऊपर–ऊपरसे स्थूलरूपसे करता है, सूक्ष्मरूपसे करता है, वह सब खुद को विचार करना है।

मुमुक्षु :– धर्मी को जब स्व में उपयोग होता है उसवक्त धर्म होता है, लेकिन उपयोग जब पर में होता है तब उसे धर्म होता है या नहीं है?

समाधान :– स्व में उपयोग हो तब धर्म होता है और बाहर हो तब नहीं है, ऐसा

नहीं है। उपयोगके साथ नहीं है, उसकी परिणति के साथ धर्म है। उसकी परिणति स्वरूप में (लगी है), दृष्टि तो उसकी स्वरूप पर जमी रहती है। उसने ज्ञायक को ग्रहण किया हुआ ही है। उसकी ज्ञाता की धारा चालू ही रहती है। उसका उपयोग इसप्रकार बाहर नहीं जाता कि उसके स्वरूप को नुकसान हो या स्वरूप टूट जाये, ऐसे उपयोग बाहर नहीं जाता। उपयोग बाहर जाये इसलिये स्वरूप की परिणति टूट जाय और एकत्व हो जाय, ऐसा नहीं है। द्रव्य का वस्तुस्वरूप ही ऐसा है।

अनादिसे परिभ्रमण करता आ रहा है तो भी द्रव्य मूल स्वभावसे.. वह विभाव परिणति करता रहा है, उपयोग बाहर जाता है, कुछ ख्याल नहीं है तो भी द्रव्य का तो नाश नहीं होता। तो अन्दर जिसने द्रव्यदृष्टि प्रगट की, यथार्थरूपसे, पुरुषार्थपूर्वक अन्दर स्वयंने द्रव्यदृष्टि प्रगट की, ज्ञाता की धारा प्रगट की, पुरुषार्थपूर्वक अंतर की परिणतिपूर्वक (प्रगट की), उसे कौन तोड़ सकता है? खुद पुरुषार्थसे खड़ा है, उपयोग बाहर जाय इसलिये वह उपयोग अपनी परिणति को तोड़ नहीं सकता। भेदज्ञान की धारा चालू ही है।

कमल जैसे पानी में निर्लेप रहता है, वैसे स्वयं निर्लेप ही रहता है। चाहे जैसे बाह्य संयोग में खड़ा हो, तो भी निर्लेप है। वस्तु स्वभावसे निर्लेप है और प्रगट पर्याय में निर्मल है। निर्लेप ही रहता है। वस्तु अनादिसे कोई जड़ के साथ एकत्व होती नहीं। प्रगट ज्ञाताधारा शुरु हुई तो कमल जैसे पानी में निर्लेप रहता है, वैसे उसकी परिणति निर्लेप भिन्न ही भिन्न रहती है। उपयोग बाहर जाये इसलिये उसका धर्म छूट नहीं जाता। धर्म तो चालू ही रहता है। ऐसी उसे अन्दरसे ज्ञान-वैराग्य की शक्ति प्रगट हुई है। उसकी ज्ञान-वैराग्य की शक्ति ऐसी है परिणतिरूप। उपयोग बाहर जाये तो भी एकत्व नहीं होता। वह बाहरसे दिखाई नहीं देता। बाहरसे वह गृहस्थामश्रम के कार्य में दिखाई दे, कोई शुभ कार्य में दिखाई दे, गृहस्थाश्रम के कार्य में दिखाई दे तो भी उसकी परिणति अंतरसे एकत्व होती नहीं। उसकी ज्ञान-वैराग्य की शक्ति कोई अलग है। उसकी ज्ञाता की धारा चालू ही रहती है। याद करना पड़े और भूल जाये ऐसा नहीं है। उसे वेदन-अमुक प्रकारसे ज्ञाताधारा चालू ही रहती है। निर्विकल्प दशा हो वह अलग बात है, लेकिन उसे सविकल्प दशा में भी ज्ञाता की धारा चालू ही रहती है। भिन्न ही भिन्न रहता है। चाहे जैसे प्रसंग हो, उसे बाहर के कोई उपसर्ग परिषह आये गृहस्थाश्रम में तो भी वह उसकी ज्ञाता की धारा को तोड़ नहीं सकते। कोई अनुकूलता के गंज आये अथवा प्रतिकूलता के ढेर आये तो भी उसकी ज्ञाताधारा को तोड़ नहीं सकते। ऐसा उसका पुरुषार्थ चालू ही रहता है। बहुत प्रतिकूलता आयी इसलिये उसकी ज्ञाताधारा टूट जाये (ऐसा नहीं है)।

एास्त्र में आता है न? पूरा ब्रह्माण्ड ईधर-ऊधर हो जाय तो भी उसे कोई डिगा नहीं सकता, उसकी ज्ञाताधारा चालू है। अनुकलता के गंज आये तो भी ज्ञाताधारासे वह टूट नहीं जाता। उसमें उसे अनुकूलता में एकत्वबुद्धि हो नहीं जाती। चक्रवर्ती का राज और देवलोक

के रत्न की राशि हो तो भी उसमें एकत्व नहीं होता। उससे भिन्न ही भिन्न, निर्लेप ही रहता है। उसे लगनी लगी आत्मा की, उसे आनन्द की अनुपमता लगी, महिमा लगी आत्मा की, उसे बाहर कोई भी आकर्षित नहीं कर सकता, वह प्रतिकूलता में खेद नहीं हो जाता। ऐसी उसकी ज्ञाता की धारा भिन्न ही रहती है। ऐसी ज्ञान-वैराग्य की शक्ति (है)। मैं तो ज्ञायकभाव हूँ। यह परिग्रह मेरा स्वरूप नहीं है। यह पुण्य-पाप के भाव (होते हैं), मैं उससे भिन्न ज्ञायकभाव ही हूँ। ऐसी ज्ञाताधारा को कोई तोड़ नहीं सकता। जिस पुरुषार्थसे जिस पंथ पर चला सो चला। पुरुषार्थ की धारा चली उसे कोई रोक नहीं सकता। खुद यदि (पुरुषार्थसे) चला तो उसे कोई परद्रव्य तोड़ नहीं सकता। परिभ्रमण किया वह खुद के पुरुषार्थ की मन्दतासे और नहीं होता वह खुद के पुरुषार्थ के अभावसे।

मुमुक्षु :- परिणति में आनन्द का वेदन आता होगा?

समाधान :- परिणति में आनन्द का वेदन.. अमुक प्रकारसे उसे शान्ति और समाधि वर्तती है। शान्ति और समाधि, विश्रान्ति वर्तती है। अनुपम आनन्द जो निर्विकल्प दशा का (होता है) जो सिद्ध की जाति का होता है वह अलग बात है। सविकल्प दशा में उपयोग बाहर है तो भी अज्ञानदशा में एकत्वबुद्धि और आकूलता का वेदन था वैसा वेदन उसे नहीं है। उसे कोई अलग जाति का समाधि और शान्ति का वेदन है। उसकी सविकल्प दशा में भी उसकी शान्ति और समाधि का वेदन कोई अलग ही होता है। अज्ञानदशा में आकूलता के वेदन में जो आकूल-व्याकूल होता था ऐसा उसे नहीं है। सविकल्प जो अज्ञानदशा में था और यह जो सविकल्प है, दोनों की जाति भिन्न है। अज्ञानदशा की एकत्वबुद्धि और इसकी भेदज्ञान की धारा, उसकी समाधि और शान्तिसे अलग ही जाति है। वह भिन्न ही है। और उसकी निर्विकल्प दशा उससे भिन्न है।